गुजरात का लोकनाट्य : भवाई

डॉ. हमीरभाई पी. मकवाणा
श्री. जे.एम. पटेल पी.जी. स्टडीज एन्ड
रीसर्च इन ह्युमिनिटीज, आणंद.

भारत में नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत और विवाद है । परंतु भरतरचित 'नाट्यशास्त्र' ई.स. तीसरी शताब्दी नाट्यकला का पहला उपलब्ध ग्रंथ माना जा रहा है । घनंजयरचित 'दशरुपक' दशवीं शताब्दी तथा विश्वनाथकृत 'साहित्यदर्पण' पंद्रहवीं शताब्दी भी महत्वपूर्ण ग्रंथ है, किन्तु नाट्यशास्त्र को ही आधार ग्रंथ माना जाता है । नाटक का मूलाधार लोकरंग है । लोकक्षेत्र की वस्तु को उठाकर अभिजात्यवर्ग के समक्ष प्रस्तुत करने की प्रक्रिया में उसे वेदों से जोडा गया और नाटयशाला को यज्ञानुष्ठान और बलिसे युक्त करके उसे घार्मिकता तथा आघ्यात्मिकता से अभिमंडित किया गया ।

लोकनाट्य का परिष्कृत शास्त्रबद्ध और आभिजात्य रुप संस्कृत नाटय तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं का नाटय है । मनुष्यजाति ने सभ्यता के आरंभ में उन्होने अपने हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति नृत्य के द्वारा की । वह अपने सुख- दुःख दोनों प्रकार के भावों को प्रकट करने के लिए शारीरिक हाव-भावों का सहारा लेने लगे । अपने अस्तित्व रक्षा के संघर्ष में मनुष्य प्रकृति के साथ भावात्मक संबंध भी जोडता रहा । मानव चेतना के विकास में स्वप्नकथाओं, कल्पनाओं, बिंबो, रुपकों, मिथकों परिकथाओं और नाट्य का आकाश खोल दिया । वास्तव में मनुष्य की अनुकरण की क्रियाने नृत्य के साथ अभिनय द्वारा नाट्य को जन्म दिया होगा । इसलिए निश्चय ही ये सामुहिक नृत्य नाटय रुप लोकनाटय की आरंभिक अवस्था है ।

भारतीय लोकनाट्य प्रस्तुतीकरण में सांवाद अभिनय रुप, सज्जा, वेशभूषा आदि के विभिन्न स्तर, अयथार्थवादी थियेटर का निर्माण करते है । वास्तव में अयथार्थवादी शिल्प इसकी महत्वपूर्ण विशेषता है । भारतीय लोकनाटयों के कथानक पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा शृंगारिक रहे हैं । लोकनाट्यों में मानव तथा दानव दो प्रकार के पात्रों का निर्वाह होता है । कुछ लोकनाट्यों में पद्यात्मक संवादों की बहुलता रहती है । रागों और रंगतों के आधार पर निर्मित इन संवादों को दुहरा दुहरा कर गाते है । इसप्रकार गीत-संगीत लोकनाट्यों के प्राणत्व है । लोकनाट्य के राग ,शास्त्रीय रागों से भिन्न लोकप्रकृति में रंगे होते है । लावणी, रेखता, गजल, छंद, सवैया, दोहा, जैसे छंद लोकधुनों में रंगकर प्रयुक्त किए जाते है । भैरव, भैरवी मालकौस बधात, मारवाडी आदि राग, लोकनाट्य की निधि है । भारत के प्रमुख लोकनाट्य नृत्य प्रधान है । यह नृत्य शास्त्रीय श्रेणी में नहीं आते किन्तु उनकी श्रेष्ठता तथा प्रभाव निर्विवाद है ।

लोकनाट्य की वेशभूषा तथा रुप सज्जा अपनी परंपरा तथा शक्ति के अनुसार भिन्न भिन्न होती है । फिर भी खास तौर पर भडकीले चटकदार रंगवाले तथा मखमली नाइलोनी या रेशमी कपडों की पोशाकें तथा हार मेखलाएँ, कमरबन्द, भुंजाबन्द तथा सिर पर मुकट पहनते है । लोकनाट्य खुले मंच पर ही खेले जाते है । उचे चबूतरे या चौराहे पर कोइ उचा स्थान ही रंगस्थल का काम करते हैं । मांच, ख्याल, नौटंकी, जमीन के उपर मंच बनाया जाता है । लेकिन भवाई तथा तेरुकुत्तु तथा गवरी आदि नाटय रुपों में जमीन पर ही नाटक खेला जाता है ।लोकनाट्यों के मंचन की रुढियाँ होती है । जैसे पूर्वरंग के प्रारंभ में वंदना की जाती है । जैसे गणपति, सरस्वती, छप्पन भैरव, गुरुदेव आदि देवी देवताओं की जय बोलते है ।लोकनाट्यो का मूल भाव समाज में व्यंग्य हास्य तथा अनय रस की निष्पति हेतु है ।इसलिए ब्रेखत मानते हैं कि-जो रंगमंच नाटक हँसा न सके, वह रंगमंच ही हँसी योग्य है । लोकनाट्यों विदूषक, रंगलो, बैढव, रंगा, हनुमान नायक सोंगाडया आदि ।करुण एवं गंभीर स्थितियों मे भी हास्य उत्पन्न कर सकता है । संवाद तथा अभिनय के द्वारा अनय पात्र सामाजिक राजनैतिक सामयिक विषयों पर व्यंग्य भी करते है । लोकनाट्य में अपने परिवेश यानी क्षेत्र विशेष का भूगोल उसकी भाषा- संस्कृति तथा परंपरा प्रवाहित है ।लोकमान्यताएँ लोकनाट्यों के द्वारा प्रकट होती है । भारतीय लोकनाट्यों की अपनी निजी विशेषताएँ भी हैं ,लेकिन सभी भारतीय लोकनाट्यों में कथानक,पात्र, मंचन, पूर्वरंग, वेशभूषा इत्यादि कुछ विशेषताएँ प्रायः मिलती

जुलती है ।इससे यह अनुमान लगाया जाता हैं कि भारतीय लोकजीवन के बाहय परिवेशगत रीतिरिवाज भले भिन्न-भिन्न हों परंतु आंतरिक रुप कुछ समान दिखते है ।

सोलंकी काल में गुजरात का सांस्कृतिक वातावरण समृद्व था ।३५० वर्षों के सोलंकी काल में विपुल साहित्य रचा गया था ।श्री साडेसरा के अनुसार ''वह भवाई जैसा ही लोकनाट्य होना संभव है ।ई सं.१३ वीं के दौरान लिखे गए एक 'लघु प्रबंध संग्रह' में भवाई यात्रा या राजा नृत्यति मंत्री पखाजं वादवति इतना अति संक्षिप्त परंतु स्पष्ट उल्लेख है जो यह दर्शाता है कि उस काल में भवाई लोकप्रसिद्व थी।'' [१] भवाई के आदि पुरुष असाईत ठाकर के जीवन काल के आधार पर भवाई का उद्भव उत्तर गुजरात मे १४ वीं सदी माना जाता है । श्री जनक दवे के अनुसार 'भूमिजात स्वतः स्फर्त कला है । ग्रामीण लोगों के विशेषभाव और आनंद के चरमोत्कर्ष के रुप में उसका आर्विभाव हुआ है । अतः हम उसे लोककला के रुप में जानते है ।[२] डॉ. महेश चंपकलाल के अनुसार गुजरात में १३ वीं सदी तक प्रेक्षणक, रासक, चारणवृत्त इत्यादि नृत ,भेद और प्रेक्षागेय रुपकों का प्रचलन था ,असाईत ठाकर ने उनका देशीकरण किया ।[३]भवाई के व्यावसायिक कलाकार तरगाला कहे जाते हैं ।गुजरात के प्रसिद्व भवाई के कलाकार जयशंकर भोजक ने रंगभूमि परिषद में दिए गए अपने व्याख्यान 'भवाई और तरगाला तथा भवाई के उद्भव की चर्चा करते हुए कविता प्रस्तुत की थी ।-

''ठाकर शाखे यजुर्वेदी औदिच्य सिद्वपुर नगर निवास ,
ब्राहम्ण भारद्वाज ,गोत्रना ,आसाइत भूमां प्रख्यात ,
ऊँझा गामे पटेल हेमा तणी पुत्री गंगा गुणवंत ,
शील रक्षवा शाह सभामां भेका जमीने राख्यों रंग ,
जमता ए ठाकर थी उपजी नायक तरगाला नी जात ,
त्रणसो साठ भवाई वेशो रची आराधी अंबा मात ।''[४]

उपर्युक्त कविता से जानकारी मिलती है कि सिद्वपुर गाँव में असाइत ठाकर नामक एक भारद्वाज गोत्री यजुर्वेदी औदित्य ब्राहमण इस क्षेत्र में सुविख्यात थे ।आसाईत ऊँझा गाँव के पुरोहित थे । उन्होंने ऊँझा गाँव की हेमा पटेल की पुत्री गंगा की शीलरक्षा हेतु मुस्लिम राजा के दरबार में उसके साथ एक थाली में भोजन किया और उसके भोजन करने से रुढीचुस्त ब्राहम्णजाति ने असाईत को जाति से बहिष्कृत कर दिया असाईत ने सिद्वपुर छोड दिया तथा ऊँझा में रहने लगे । हेमा पटेल ने असाईत तथा उसके वंशजों को संरक्षण का वचन दिया ।असाइत की आराध्यदेवी अंबा माता थी ,जिस की उपासना में उसने ३६० भवाई के वेशों की रचना की । इसप्रकार मूल रुप से असाई ठाकर भवाई लोकनाट्य के प्रर्वतक तथा तरगाला समुदाय के आदि पुरुष रुप में प्रसिद्व हैं ।इस कथा की ऐतिहासिक जनश्रुति के आधार पर स्वयं असाईत ठाकर एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है । जिन्होंने 'हंसाऊली' नामक एक काव्य की रचना की है । 'हंसाऊली' के अंत में संवत १४१७ ई.स १३६१ में काव्य रचना की समाप्ति का निर्देश किया गया है । हंसाऊली की भाषा पुरानी पश्चिमी राजस्थानी से मिलती जुलती गुजराती भाषा का आरंभिक रुप है । भवाई वेश भी इसी भाषा में लिखे गए होंगे । इसलिए भी वेशों में मारवाडी भाषा का प्रभाव मिलता है । इस आधार पर असाईत का १४ वीं सदी में होना प्रमाणित होता है । इस सम्बंध में डॉ. सुधाबेन देसाई के अनुसार 'असाईत ई.सं १३२० और ई.सं १३९० के बीच के काल में रहे होगें उस समय खिलजी सत्ता का अंत तथा तुगलक सत्ता का आरंभ हो रहा था । इस प्रकार असाईत मुहम्मद या फिरोज तुगलक के समय में रहे होंगे ।[५]

मध्यकालीन गुजरात में संस्कृत रुपक ,उपरुपक की तथा साहित्य की एक समुद्व परंपरा विधयमान थी । इस परंपरा से असाईत अवश्य परिचित रहे होंगे ,यानि असाईत ठाकर रचित 'रामदेववेश' हेमचंद्रचार्य कृत 'शलाकापुरुष' से ज्ञात होता है कि उन्हें समुद्व सांस्कृतिक विरासत का ज्ञान था । उतना ही नही उनके पास समाज चिंतन की द्रष्टि, हास्य व्यंग्य की क्षमता तथा राग-ताल गति-मुद्रा जैसी रंगशैली की जानकारी भी थी ।इसप्रकार तरगाला को ही भवैया ,भवाई लिखने वाला,या भोजक,नायक आदि नामों से पुकारा जाता है । गाँवों में मंदिर के सामने खुले मैदान में रातभर चलनेवाले भवाई प्रदर्शन के अंतर्गत अनेक वेशों, नाटिकाओं का क्रमिक मंचन किया जाता

[१] गुजरात मा सांस्कृतिक नाटक : इतिहास नी कडी,पृ.-५०-५७
[२] . लोकभवाई मा डोकियुं, रंगभवाई.
[३] भवाई : पृष्ठभूमि और पहचान, भारतीय लोकनाट्य : अमदाबाद.
[४] गुजरात साहित्य सभा द्वारा प्रकाशित रंगभूमि परिषद की रिपोर्ट, १९३७-३९,पृ.-६९.
[५] भवाई : भारतीय लोकनाट्य,पृ.-१५३.

है ।इसप्रकार वेशों की श्रृखंला को ही भवाई प्रदर्शन कहाजाता है ,इसलिए एक वेश के प्रदर्शन को भी भवाई कहा जाता है । डॉ.चंपकलाल के अनुसार 'भवाई' शब्द भव् + वही शब्दों से बना है और इसका अर्थ है-जीवन का लेखा-जोखा जिंदगी का हिसाब किताब कर्मो का आईना । जीवन की समस्त गतिविधियों को वह छूलेता है ।'[६] डॉ. रसिकलाल परीख के अनुसार भवाई की पुस्तकों में भावन शब्द का निर्देश किया है यथा 'आबु के मालिक का भावन' द्वारका के मालिक का भावन 'ढोला नु भावन' आदि । जैन परिभाषा में मंदिरों मे प्रस्तुत किए गए भक्तिप्रधान गीत –नृत्य प्रकारों को भावना कहा जात है । इसप्रकार सुधाबेन देसाई ने भी भवाई का सम्बन्ध भावन और भावना से जोडा है ।उनके अनुसार संस्कृत भावना से गुजराती,राजस्थानी,भावना तथा भावना,भावक,भवाई,और अंत में भवईया का कार्य भवाई ।[७]खेडा जिला के एक प्रौढ भवैया श्री केशुभाई व्यास ने कहा है कि 'भवाई दो शब्दों 'भववाही' से मिलकर बना है और उसका अर्थ है पूरे जीवन का जातियों, राजनीतिक तथा समाज का इतिहास । भव,जगत के राग –विराग सुख –दुःख शुभ असुभ रागरंग को वहन करने वाला नाट्य ही 'भवाई' है ।'[८]

गुजरात में आश्विन मासकी नवरात्री के अवसर से भवाई प्रदर्शन का आरंभ होता है।दिवाली के बाद भवाई मंडलियाँ अपने नियत तथा आमंत्रित गाँवो में जाते है । खुले रंगमंच पर पुरे रात भर गीत ,संगीत और नृत्य के साथ क्रम से नाटिकाओं, वेशो, का प्रदर्शन होता है। भवाई प्रदर्शन में 'प्रहसन' प्रमुख तत्व होता है । भवाई की मंडली कों 'ढोकु' 'पेडु' तथा सौराष्ट्र में 'बेडा' कहा जाता है । भवाई मंडली में २० से अधिक सदस्य नहीं होते और ९ से कम कलाकार नहीं होते बीस की संख्या अधिक आदर्श मानीगई है ।इस मंडली मे स्त्री पात्र, पुरुष पात्र ,गायक नर्तक तथा सहयोगी कलाकारों का समावेश होता है । भवाई खेलने वाली विशिष्ट जाति तरगाला कहलाती है । जो मुख्यतःउत्तर गुजरात में रहती है ।इन में हर मंडली की वंश परंपरागत यजमान जाति तथा बधें हुए गाँव होते है ।जन–श्रृति से ज्ञात होता है कि भवैया ,के यजमान किसी न किसी गाँव में पटेल ही होते थे ,भवैया भवाई की कला, व्यवसाय तथा यजमान समुदाय को वांशिक परंपरा से ही प्राप्त करते है । वे वर्ष के चार माह छोडकर सात या आठ माह गाँवों में घुमकर भवाई का खेल प्रदर्शन करते है । लेकिन अब तो अन्य जातियाँ भी भवाई खेलने लगी और आज भवाई खेलनेवाली तथा आयोजक ,यजमान जातियाँ अनेकानेक है ।भवाई के पूर्वरंग के अतर्गत सर्वप्रथम चाचर रचना तथा पूजा विधि का समावेश होता है ।चाचर में देवी के प्रतीक रुप में दीपक तथा मशाल जलाने के बाद अंबिका तथा बहुचर आदि देवियों की जय जयकार की जाती है । उसके बाद नायक मंडली के सदस्यों को भवाई शुरु करने का आदेश देता है ,और शुरु हाता है –'भले भले भाई भाई ,रमती करों भवाई' उसके बाद भवाई का मुख्य वाध्य भूगंल बजाकर ग्राम्य देवता को आमंत्रित किया जाता है ।भूगल के साथ तबला ,झांझ ,ढोलक ,इत्यादि बाजो को बजाया जाता है । भवाई की भाषा मुख्य रुप से गुजराती लोकबोली रही है ।विकासकाल में उस पर उर्दू खडीबोली हिन्दी और मारवाडी का प्रभाव भी रहा । मुस्लिम चरित्र प्रधान वेशों में उर्दू और हिन्दी का प्रयोग किया जाता है । मुख्य रुप से भवाई तरगाला जाति का पेशा बना रहा । परंतु आज गुजरात में अनेक जातियों मे भवाई खेलने की प्रथा है ।ब्राह्मणों के अलावा पिछडी जातियों में भवाई खेली जाने लगी ,इन में से कुछ मंडलियाँ देवी अम्बा की पूजा तथा नवरात्रि के लिए तथा कुछ मंडलियाँ मात्र मनोरंजन के लिए तथा कुछ मंडलियाँ जीविका के लिए भवाई खेलती हैं ।उदाहरण के रुप में गुजरात में अमुसूचित जातियों में तुरी नामकी जाति के भवाई खेलने के प्रमाण मिलते है । तुरी लोग के जीविका का माध्यम भवाई है ।अधिकतर भवाईयों के यजमान पटेल बने रहे ,इस के साथ ही कुछ भवाई मंडलियों के यजमान क्षत्रीय या राजपूत बनने लगे ।खेडा जिले में क्षत्रियों के भवाईयों को मराठा कहाजाने लगा ।इससे पता चलता है कि यह २०० वर्षो के बीच घटित हुआ होगा जनेऊ पहननेवाले जनैया कहलाने लगे उसी प्रकार भवाई खेलने वाले को भवाईया कहलाने लगे ।भवाई के वेशो की रचना में असाईत के अलावा अनय किसी का नाम चर्चित नहीं हुआ है, किन्तु विकासकाल में वेशों की रचना में अनेक परिवर्तन हुए है ।परंतु भवाई की वेशों की रचना पर असाईत का नाम एकाधिकार रहा ।

भवाई के क्षेत्र में श्री रमणलाल महीपतराम नीलकंठ का 'राई नो पर्वत' श्री दलपतराम का 'मिथ्याभिमान' श्री चंद्रवदन महेता द्वारा लिखित 'लोक भवाई' शोना गांधी द्वारा रचित 'जसमा ओडन' श्री जसवंत ठाकर द्वारा लिखित 'अछूत नो भवाई वेश' 'झंडाझूलण नो वेश' धीरुबेन पटेल द्वारा रचित 'भवनी भवाई' के अतिरिक श्री जनक दवे ने सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं पर वेश लिखे, उन्हों ने साक्षारता, राष्ट्रीयता, एकता, अस्पृश्यता विरोध नारीजागरण अंतरिक्ष ज्ञान इत्यादि विषयों को लेकर रचनाकारों ने रचना की है । जो गुजराती

[६]. भवाई : पृष्ठभूमि और परंपरा, पृ.-७७.
[७]. आकाश भाषित,पृ.-२६९.
[८] माच और भवाई का तुलनात्मक अध्ययन,डॉ. राजकुमारी व्यास,पृ.-८७.

साहित्य तथा भवाई दोनों की द्वष्टि से महत्वपूर्ण है । इसप्रकार निःसंकोच कह सकते हैं कि भवाई समय के साथ जुडी है । भवाईयों द्वारा खेले जानेवाले सभी वेशों को असाईत रचित कहाजाता है ,किन्तु उसके बाद भी यदि हम वेशों की हस्तलिखित और मुद्रित प्रतियों को देखे तो यह पता चलता है कि भाषा कथानक और संदर्भ की द्वष्टि से भवाई में बहुत अधिक परिर्वन और विकास हुआ है ।खास करके दो बाते उल्लेखनीय है –

(१) समकालीन समस्या का चित्रण ।
(२) रंगलो के साथ रंगली नये पात्र का प्रवेश ।

प्रारंभ से ही भवाई के कलाकारों को सामाजिक सम्मान प्राप्त हुआ है । श्री जयशंकर सुंदरी ने अपने व्याख्यान में भवाई के उन महान कलाकारों का स्मरण किया था ।जिन्हों ने अपने जीवन में महत्वपूर्ण सम्मान प्राप्त किया था ।उनमें से कुछ नाम -पूना के पेशवा राजा भवाई की दो-तीन मंडलियो का निर्वाह करते थे ।तथा सोने की जनोई प्रदान करते थे ,श्री मोतीलाल नायक को भवाई तथा कवित्व हेतु जुनागढ राज्य का दीवान का पद प्राप्त हुआ था ।श्री हरिशंकर अंबाराम नायक को उनकी कला पर प्रसन्न होकर इनाम में एक गाँव दिया गया, लुमरी संगीतकारों में वडनगर के जगजीवन तथा मूलचंदजी को भारत भर में सम्मान प्राप्त हुआ था । श्री जयशंकर सुंदरी ने ऐसे अनेक अन्य कलाकारों के बारे में जानकारी दी थी जिन्हें राजाओं तथा प्रजाजनों द्वारा संगीत शिक्षक के पद पर नियुक्त किया गया था । स्वयं जयशंकर सुंदरी को गुजरात और गुजरात के बाहर एक श्रेष्ठ कलाकार के रुप में सम्मान प्राप्त था । स्त्रीपात्र का श्रेष्ठ अभिनय ने ही 'सुंदरी हॉल उनकी सामाजिक श्रेष्ठता का प्रमाण भी है । आज से करीब तीन – चार दशक पूर्व गुजरात के बडे नगरों में एवं गाँवों में मनोरंजन एवं हास्य विनोद का सब से प्रभावपूर्ण उपकरण था 'भवाईवेश' । मनोरंजन एवं लोकशिक्षा का वह सशक्त माध्यम था । गुजरात के आँचंलिक प्रदेशों में जहाँ आजादी के बाद न बिजली की रोशनी थी न पक्की सडक वहाँ भवाई के कलाकार बैलगाडी लेकर पहुँचते थे । रात के समय पूरा गाँव एक स्थान पर जमा हो जाता था । पेट्रोमेक्स जलती । फिर क्या था -भवाई के कलाकार विविध वेश धारण कर लोक भाषा में राग और रंग के माध्यम से लोक मनोरंजन का सराहनीय प्रयास करते थे । आँचलिक प्रदेशों के लिए यही एक मात्र मनोरंजन का साधन था ।

भवाई की वर्तमान स्थिति पर विचार करे तो आज तरगाला तथा अनय भवाई के पेशेवर समुदायों की आर्थिक सामाजिक स्थिति कमजोर हो गयी है ।भवईया लोग भवाई के अलावा मजदूरी और नौकरी करने के लिए बाध्य हो गये है । गाँवो में भवाई की मागकी कमी आधुनिक संचार माध्यमो का प्रभाव तथा आर्थिक संकटो के कारण भवाईया लोग परंपरागत व्यवसाय को छोड रहे है । गाँवों में लोगों को आकर्षित करने के लिए गीतों एवं नृत्यों का आयोजन किया जाता है । इस कारण भी भवाईयों की सामाजिक प्रतिष्ठा में कमी आई है । इसके बावजूद उत्तरगुजरात में तरगाला मंडीलयाँ सक्रिय है । भवाई के कलाकारों की वर्तमान स्थिति कमजोर अवश्य है ,परंतु हमारी भवाई की परंपरागत धरोहर ने वर्तमान काल में नाटक और सिनेमा को अनेक कलाकार दिए ।ग्रामीण क्षेत्रों मे सिनेमा, टीवी,विडीयो आदि के कारण भवाई मंडलियों को क्षति अवश्य पहुँची है । अबतो शहरों में शौकिया मंडलियों के प्रस्तुतीकरण में भी अंतर आया है।शहरों में रात- रात भर भवाई के वेश नही खेले जाते है ।शहरों में प्रदर्शन को नाटक की तरह सीमित २ या ३ घंटे का बनाकर रखदिया है।शहरी भवाई के वेश पर सामयिक समस्याओं का, आधुनिकता का प्रभाव दिखाई देता है ।परंतु ग्रामीण मंडलियों पर परंपरागत भवाई का काफी प्रभाव है । राष्ट्रीय नाट्य विधालय के संयोजन में दिनांक २४-१०-८० से १-११-८० तक गुजरात के सोलाह गाँवो में 'भवाई मेला' का आयोजन किया गया ।तथा इन में सखड भवाई मंडली मोरबी ,अंबिका भवाई मंडल पाटण, समेत गुजरात की अनेक मंडलियों ने भवाई के वेशों को प्रस्तुत किया । इस मेले के कारण भवाई मंडलियों को प्रोत्साहन मिला ।इस के अलावा गुजरात सरकार की संगीत नाटक अकादमी की आर्थिक सहायता से, दर्पण के संयोजन में, वीसनगर में भवाई तालीम शाला स न् १९८२-८३ से चल रहा है । इसमें भवाई का प्रशिक्षण दिया जाता है । प्रख्यात भवाई रंगकर्मी श्री चिमन भाई नायक तथा श्री कैलाश पंडया श्री गोवर्धन पंचाल जैसे नाट्यविद् जुडे रहे देश और गाँवों में दृश्य – श्रव्य उपकरणों से भवाई की महिमा धीरे –धीरे कम होने लगी । आज बरसों बाद लुप्तप्राय होती जा रही इस कला को पुनर्जिवित करने के लिए हाल ही में २७ मार्च 'विश्वरंगभूमि दिन' के अवसर पर गुजरात राज्य संगीत नाटक अकादमी और सुरक्षा सेतु द्वारा आयोजीत 'नाटयोत्सव-२०१६ 'तत्खता ना तोखार' सात नाटको का समुह मेघ धनुष' गुजरात के १२ शहरों में ४० नाटकों का प्रदर्शन का प्रयास एक अनुठा प्रयोग है इस प्रयोग से गुजरात में रंगकर्मीयों के उत्साह में वृद्वि एवं दर्शकों में जागरुकता अवश्य आएगी । गुजरात राज्य सरकारश्री का यह संनिष्ठ और सराहनीय प्रयास है।